International Journal of Applied Research 2020; 6(8): 341-343

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2020; 6(8): 341-343
www.allresearchjournal.com
Received: 08-06-2020
Accepted: 18-07-2020

डॉ. नन्दकिशोर ठाकुर
मध्य विद्यालय सुन्दरपुर, दरभंगा नगर, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. नन्दकिशोर ठाकुर
मध्य विद्यालय सुन्दरपुर, दरभंगा नगर, दरभंगा, बिहार, भारत

सामाजिक संवेदना में संस्कृत की भूमिका

डॉ. नन्दकिशोर ठाकुर

सारांश
इस भौतिकवादी युग में स्वस्थ एवं सभ्य समाज की कल्पना संस्कृत के बिना बिल्कुल ही निराधार है। सम्प्रति आये दिन समाज में कोई न कोई घृणित घटनाएँ प्रायः होती ही रहती है। आज हत्या, अपहरण, चोरी–डकैती, लूट, बलात्कार, शोषण, जमाखोरी, घूसखोरी, भ्रष्टाचार इत्यादि कुकृत्य सामान्य सी बात हो गई है। इससे लोग संवेदनशील होकर सड़क–जाम, धरना–प्रदर्शन, लड़ाई–झगड़ादि करते हैं। फलतः समाज के अर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, आध्यात्मिक, नैतिक आदि विकास में अवरोध उत्पन्न होता है। सम्प्रति प्रायः सर्वत्र अशान्त वातावरण ही देखने को मिलता है। कहीं भी शान्त वातावरण दृष्टिगोचर नहीं होता। फलतः सर्वत्र 'त्राहि माम्' की स्थिति बनी हुई है। अतएव संवेदनहीन होते समाज में संस्कृत की महत्ता को स्थापित करके ही सभ्य, स्वस्थ एवं संवेदनशील समाज का निर्माण हो सकता है। इस संदर्भ में संस्कृत की यह उक्ति द्रष्टव्य है–

सर्वेषां मंगलं भूयात् सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्। [1]

शब्द कुंजीः संवेदना, आध्यात्मिक, भौतिकवाद, जागरण, उत्प्रेरण, पीयूषधारा, परोपकार, मानवता

प्रस्तावना
प्रस्तुत शोध–पत्र को संस्कृत के प्रायः सभी आयामों से परिपूर्ण किया जायेगा। संस्कृत में वह अमृत कोश है जिसके बून्द–बून्द से मानवता का संदेश प्राप्त होता है। सम्प्रति समाज में नैतिक मूल्यों का लोप होता जा रहा है जिसके कारण लोगों में ईर्ष्या–द्वेष, स्वार्थ, अहंकारादि की भावना बढ़ गई है। फलस्वरुप लोग गलत कार्यों में प्रवृत्त हो रहे हैं। वस्तुतः समाज अशान्तिरूपी सागर के किनारे स्थित दिखाई पड़ते हैं। अशान्ति से ही मानवता के विनाश की कल्पना की जाती है। अतएव समाज में मानवता की स्थापना करने के लिए लोगों को संस्कृत के रसामृत का पान करना होगा ताकि लोगों में गलत भावना न पनप सके और उन्हें अधिक संवेदनशील बनाया जा सके। इस सम्बन्ध में नारदभक्तिसूत्र का निम्न सूत्र बहुत ही निभालनीय है– **'अमृतस्वरूपा च'** [2]
विश्व के प्राचीनतम काव्य वेद में मानव–जीवन को पूर्णता प्रदान करने की अद्भुत क्षमता है। जीवन का कोई भी क्षेत्र ऋषियों की दृष्टि से अछूता नहीं है। वेद में वैचारिक समृद्धि की पराकाष्ठा ही दृष्टिगोचर होती है। सृष्टि के आदि में ऋषियों द्वारा ईश्वरीय ज्ञानस्वरूप वेद नैतिक मूल्यों का जन्मदाता है। वस्तुतः वेद साक्षात् ब्रह्म की वाणी है, जो मानव–जीवन के नैतिक मूल्यों एवं नियमों का निर्धारण करती है। वैदिक ज्ञान का अमूल्य स्रोत नैतिक मूल्यों का उत्प्रेरक बनकर वेद जीवन के सार्थक रूप को परिलक्षित करते हैं। अतः वेद के विषय में महर्षि मनु की यह उक्ति सर्वविदित है– **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'** [3]
वेद में निहित नैतिक तत्त्वों के आधार पर ही मानव के व्यक्तिगत एवं सामाजिक आचार–विचार का निर्धारण हुआ है। मनुष्य अपने जीवन में नैतिक मूल्यों को स्थापित करते हुए स्वयं प्रसन्न रहते हैं और दूसरों को भी प्रसन्न करते हैं। वेद के पठन–पाठन से ही समाज में उचित ढ़ंग से जीने का मूल–मन्त्र प्राप्त होता है। हम समाज में परस्पर किस प्रकार का व्यवहार करें, मनुष्य का नैतिक मूल्य एवं कर्त्तव्य क्या है? इन सभी प्रश्नों का पर्याप्त विश्लेषण हमारे वेद में प्राप्त हैं। वेद में नैतिक मूल्यों का पालन करते हुए परिवार में साथ मिलकर चलने, समान रूप से बोलने या विचारने की आज्ञा निम्न मन्त्र से प्रतिपादित होती है–

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते।। [4]

वेद में सत्, अहिंसा, प्रेम, विश्वबन्धुत्व, लोक–कल्याण, सहयोग, परोपकार, देशभक्ति, विनम्रता,

सहानुभूति, अनुशासन, धैर्य, सहिष्णुता, साहस, दृढ़–निश्चय, क्षमा, मित्रता, दान, दया, तत्परता, आत्मविश्वास, ईमानदारी आदि की भावना ही वस्तुतः संवेदनशील समाज की आधारशिला है। मानव–धर्म एवं मानव–शास्त्र के शाश्वत सिद्धान्तों का बीज ऋक् संहिता में ही दृष्टिगोचर होता है जिसके कारण मानव में स्वार्थ, लालच, अहंकार आदि नकारात्मक भावना नहीं आती है। ईशावास्योपनिषद् भी इसी भाव को पुष्ट करता है–

ईशावस्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।। [5]

वैदिक काल में सामाजिक व्यवस्था बहुत ही सुदृढ़ थी। उस समय लोगों में नैतिक आचरण कूट–कूट कर भरा हुआ था। लोगों में सच्ची प्रवृत्ति थी। फलतः समाज संवेदनशील था। वैदिक शिक्षण–पद्धति का मूलाधार ही शास्त्रगत ज्ञान के साथ शिष्य को नैतिक आचरण की शिक्षा देना था। इसीलिए तत्कालीन समाज में गुरुकुल–पद्धति का प्रचलन था, क्योंकि स्वयं गुरु आदर्श रूप में शिष्य को सदाचरण की शिक्षा देते थे। तैत्तिरीयोपनिषद् में भी आचार्य शिष्य को सत्य बोलने के लिए कहता है। वह शिष्य को गृहस्थ जीवन में आचरणीय अन्य आचारों का भी उपदेश देता है–

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।..... मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। [6]

शिष्य अपने गुरु के द्वारा दिये गये उपदेशों को धारण कर समाज के अन्य लोगों को भी धारण करवाते थे जिसके कारण तत्कालीन समाज में ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ, अहंकारादि का कोई नाम भी नहीं था। फलतः संवेदनहीन समाज के स्थान पर सभ्य समाज की भित्ति दृढ़तर होती थी।

आज सम्पूर्ण संसार समस्याओं की अग्नि में झुलस रहा है, भौतिकतावाद के नशे में चूर हो रहा है, सांसारिक आसक्तियों की मार से कराह रहा है। हर क्षेत्र, हर जाति, हर राष्ट्र, हर धर्म एक दूसरे की आँखों की किरकिरी बने हुए हैं। प्रेम, करूणादि जैसे दैवी गुणों के उपर क्रोध, अहंकार आदि दानवी अवगुण अपना अधिकार जमाते जा रहे हैं। कोई भी क्षेत्र समस्याओं से अछूता नहीं रह गया है, चाहे वह क्षेत्र राजनीति का हो या समाज का, अर्थ का हो या धर्म का, नैतिकता के ऊपर हावी होती जा रही है। धर्म के उपर अधर्म सर चढ़कर बोल रहा है जिसके कारण समस्याओं की विकराल काया मानवता को लीलने के लिए एड़ी–चोटी एक कर रही है। आज आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक तापों के दावानल से सारा सभ्य समाज आक्रान्त है। संवेदनाओं का समतल पाशविकता के मरूस्थल में परिणत होता जा रहा है। लूट, हत्या, अपहरण, बलात्कार, भ्रष्टाचार एवं अनेकानेक अनाचारों के अन्धकार में संस्कृत की नारदभक्तिसूत्र द्वारा संकेतित भक्ति की पीयूषधारा से सद्भावनाओं का नंदनकानन फिर से सज सकता है और संवेदनहीन समाज के स्थान पर सभ्य समाज का निर्माण हो सकता है। संस्कृत के नारदभक्तिसूत्र के द्वारा मनुष्य न केवल स्वयं का उद्धार कर सकते हैं अपितु दूसरों का भी उद्धार कर सकते हैं– **स तरति, स तरति, स लोकांस्तारयति।** [7]

वर्तमान युग में संस्कृत की पारसमणि गीता का अत्यधिक महत्त्व है। सम्प्रति मानव के सामने अनेक समस्याएँ हैं जिनके कारण समाज के लोग अधिक संवेदनहीन बनते जा रहे हैं। मानव की सभी समस्याओं का निराकरण संस्कृत के गीता के उपदेशों के अध्ययन से प्राप्त होता है। अतः आधुनिक युग में मानव को गीता से प्रेरणा लेनी चाहिए। लोक–कल्याण ही गीता का मुख्य उपदेश है। गीता का उपदेश मानव को सही रास्ते पर लाकर सभ्य समाज का निर्माण करा सकता है। गीता संसार के सभी मानवों का मार्गदर्शन कर सकती है। आज का मानव भी अर्जुन की तरह एकांगी है, जिसे विभिन्न विचारों में संतुलन लाने के लिए गीता का अध्ययन परम आवश्यक है। इस ग्रन्थ में सामाजिक दायित्वों के निर्वहन पर पूरा बल दिया गया है। गीताग्रन्थ के अनुसार स्वार्थयुक्त कर्मो का त्याग ही संन्यास है–

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयोविदुः। [8]

संस्कृत के हितोपदेश में सुभाषित पद अमृत के समान हैं जो समाज को सभ्य एवं संवेदनशील बनाने में सर्वोपरि स्थान रखते हैं। हितोपदेश ग्रन्थ ही दुराचारी लोगों को अमृत के समान उपदेश देकर सही रास्ते पर ला सकते हैं। अंगुलीमाल डाकू भगवान् बुद्ध के उपदेश से ही गलत मार्ग को त्याग कर सन्मार्ग को अपनाये और बौद्ध–भिक्षु बन गये। उसी प्रकार खूंखार डाकू रत्नाकर ने अपना आतंक सर्वत्र फैला रखा था जिसके कारण लोग उनसे काफी भयभीत थे। फलतः देवर्षि नारद के उपदेश से वे अपने आतंक को छोड़कर आदिकवि वाल्मीकि बन गये जिनकी रचना 'रामायण' आदिकाव्य कहलाया। इस सन्दर्भ को हितोपदेश ग्रन्थ भी पुष्ट करता है–

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।। [9]

समाज में लोग सांसारिक माया–मोह के जाल में फँसे रहते हैं जिसके कारण लोगों में स्वार्थ सनी भावना बहुत तीव्र हो गयी है। ऐसे लोगों के प्रति समाज में आदर की भावना नहीं होती किन्तु कुछ लोग जाति, धर्म एवं अपनत्व की भावना से ऊपर उठकर संसार के सभी लोगों को अपना ही परिवार समझते हैं। समाज में ऐसे लोगों का अनुकरण करना चाहिये ताकि वहाँ राम–राज्य की स्थापना हो सके। अतएव संस्कृत की यह उक्ति सर्वविदित है–

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसां।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।। [10]

सामाजिक संवेदना की भाव–भूमि के निर्माण के लिए मानव–धर्म के अन्तर्गत दया की भावना सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। असहाय व्यक्ति पर दया करना सत्त्व गुण का संकेत माना जाता है। संसार में वही सुकृति पुरुष है, जो परहित के लिए पीड़ित रहता है तथा वही सन्त है, जो दूसरों के दुःखनिवारण में दत्तचित्त रहता है। पद्मपुराण में कहा गया है कि दया के समान न कोई धर्म है, न कोई तप है, न कोई दान है और न कोई सखा है। जो मानव दुःखी जीवों का उद्धार करता है, वही पुण्यात्मा है तथा वही नारायण के अंश से उत्पन्न समझने योग्य है–

न दयासदृशो धर्मों न दयासदृशं तपः।
न दयासदृशं दानं न दयासदृशः सखा।।
दुःखितानां हि भूतानां दुःखोद्धर्त्ता नरो हि यः।
स एव सुकृतिके ज्ञेयो नारायणं वंशजः।। [11]

सामाजिक संवेदना के लिए परोपकार मनुष्य का प्रमुख कर्त्तव्य माना गया है। धर्म और अधर्म एवं पाप और पुण्य के सम्बन्ध में आदिकाल से विचार होता आया है। पाप से दुःख तथा परोपकार से सुख प्राप्त होता है। इस सन्दर्भ में संस्कृत की यह उक्ति सर्वविदित है–

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

परोपकार बाह्य दृष्टि से दूसरों के उपकार को कहा जाता है किन्तु वास्तव में उससे अपना ही अधिक उपकार होता है क्योंकि परोपकार से पुण्य होता है तथा पुण्य से ही सभी प्रकार के आनंद प्राप्त होते हैं। प्राणियों का जीवन एक–दूसरे के सहयोग पर ही आश्रित होता है। जब हम दूसरे का सहयोग अथवा उपकार प्राप्त करते हैं, तब दूसरे का सहयोग अथवा उपकार करना हमारा भी कर्त्तव्य हो जाता है। अतएव सभ्य एवं स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए मनुष्य में सहयोग एवं परोपकार की भावना कूट–कूट कर भरी होनी चाहिए। इस सन्दर्भ में संस्कृत की उक्ति द्रष्टव्य है–

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय वर्षन्ति मेघाः परोपकारायमिदं शरीरम्।।

सामाजिक संवेदना के उत्प्रेरण में नीति–ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत के सुभाषित पद्यों का एक–एक पद भी सभ्य समाज के निर्माण के लिए औषधि के समान है। प्रत्येक समाज में सभी जातियों के लोगों के साथ सभी का कुछ न कुछ भ्रातृवत् सम्बन्ध अवश्य ही रहता है। अतएव अपने से बड़े–बूढ़ों के प्रति कुछ न कुछ कर्त्तव्य अवश्य रहता है जिससे लोगों में संस्कार की वृद्धि होती है। इस सन्दर्भ में संस्कृत की यह अमृतवाणी काफी प्रसिद्ध है–

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।

इससे लोगों में विनम्रता आती है और बुरे कर्मों को छोड़कर कल्याणकारी कर्म के प्रति आसक्त होते हैं। फलतः संवेदनशील समाज का निर्माण होता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि सामाजिक संवेदना के जागरण में संस्कृत भाषा की महती भूमिका है। इस भाषा के संवर्द्धन एवं संरक्षण से ही समाज में व्याप्त अत्याचार को दूर किया जा सकता है। **'सेवा परमो धर्मः', 'अहिंसा परमो धर्मः'** इत्यादि संस्कृत सुभाषित पद्य आज के संवेदनहीन समाज के लिए परम औषधि के समान हैं जिससे लोगों में सद्विचार उत्पन्न होगा तथा संवेदनशील समाज का निर्माण होगा।

संदर्भः

1. गरुढ़पुराण, उत्तर खण्ड– 35/11
2. नारदभक्तिसूत्र– 03
3. मनुस्मृति– 02/06
4. ऋग्वेद– 10/191/02 श्री राम शर्मा आचार्य
5. ईशावास्योपनिषद् मन्त्र– 01
6. तैतिरीयोपनिषद्, वल्ली– 01, अनुवाक– 11
7. नारदभक्तिसूत्र– 50
8. श्रीमद्भगवद्गीता– 18/02
9. हितोपदेश, मित्रलाभ– 14
10. हितोपदेश, मित्रलाभ– 75
11. पद्मपुराण, पाताल खण्ड– 102/15–17